● छाया : मुकेश पारपियानी

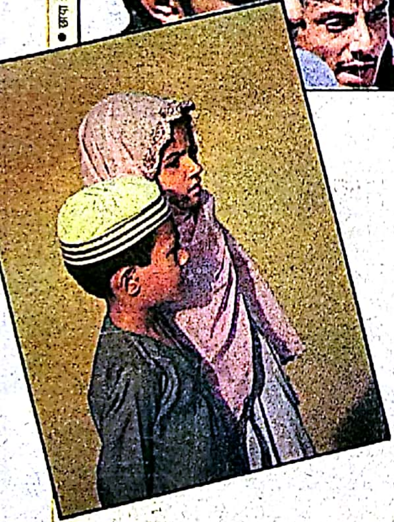

मुस्लिम मन

संकट-बोध की मानसिकता

● प्रो. फखरुद्दीन बेन्नूर

५ अप्रैल से शुरू हुआ रमजान शरीफ का महीना ५ मई को समाप्त हुआ. इस्लामी मान्यता के अनुसार इसी मास से हजरत मुहम्मद साहब को कुरान शरीफ का ज्ञान होना शुरू हुआ था और कई वर्षों बाद इसी माह उसकी पूर्णता भी हुई. मुस्लिम समाज में इस को इबादत का श्रेष्ठ वक्त मानते हैं.

लेकिन मुस्लिम समाज के बारे में हम क्या मानते हैं और कितना जानते हैं? अपरिचय की दीवार दिनोंदिन ऊंची होती जाती है और कुछ रूढ पहचानों को अपने मन-मस्तिष्क से चिपकाये हम और अजनबी बनते जाते हैं. एक ही मुल्क के दो समुदायों के बीच ऐसा अजनबीपन कितना दुर्भाग्यपूर्ण और घातक हो सकता है, इसका अंदाजा लगाना हो तो बस, आजादी के बाद से इतिहास के पन्ने पलट जाइए. सांप्रदायिकता इसी अजनबीपन का परिणाम है.

हम इस आयोजन में वे कुछ पन्ने पलटना चाहते हैं जो अजनबीपन की दीवार को छोटा करें और हमें उस मन में झांकने का मौका दें जिसकी चर्चा तो देश में खूब होती है, पर जिसे हम पहचानते नहीं हैं. पढ़िए, भारतीय मुसलमान के मन-सोच-मान्यता व जीवन की सच्चाइयों को बतलानेवाले आलेख, बातचीत व रिपोर्ताज!

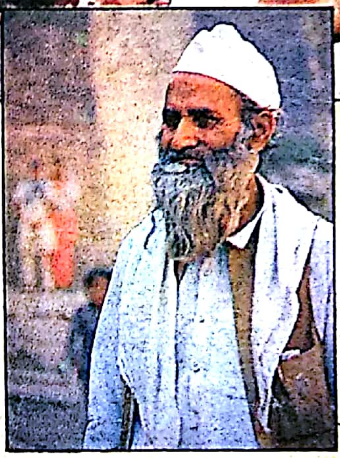

● छाया : [illegible]-आशुतोष त्रिवेदी

अंग्रेजों ने जाते-जाते देश-विभाजन किया, हमने उसे समाज के विभाजन के रूप में स्वीकार कर लिया. इस 'हम' में कौन-कौन शरीक हैं? वे सब जो मानते हैं कि भारतीय समाज की विविधता उसकी विशेषता है, विवशता नहीं है; इस विविधता का सफलतापूर्वक निर्वाह करना एक ऐतिहासिक दायित्व है, जो बोझ नहीं, वरदान है.

भारतीय समाज के प्रति यही दृष्टि थी जिसने इसे कई दौर में विघटन से बचाया और इसका समन्वित रूप निखारा. लेकिन देश का विभाजन जिन दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के बाद हुआ उसने नक्शे पर ही नहीं, मन पर भी लकीरें खींच दीं. मुस्लिम समाज के बारे में बहुत-बहुत चिंता करने के बावजूद उसे निकट से समझने-पहचानने की कोई सार्थक व गंभीर कोशिश नहीं हुई. पर हमारे एकदम निकट या कहें कि हमारे आंगन से जुड़ी एक ऐसी दुनिया बन गयी जिसकी भौगोलिक सच्चाई के बारे में चाहे हम जितना लिखते-बोलते हों, उसकी सामाजिक सच्चाई के बारे में एकदम कोरे रह गये.

देश के भीतर एक ऐसे अनजान समाज की उपस्थिति कई तरह के अपशकुन का बायस बन सकती है, इसे आजादी के बाद से अब तक

हमसे अधिक बेहतर कौन समझेगा? मुस्लिम समाज और शेष भारत के समाज में अपरिचय का यह क्षेत्र जितना विस्तृत हुआ है, सामाजिक सौहार्द व संतुलन का क्षेत्र उतना ही संकीर्ण हुआ है—सांप्रदायिक तनाव के पलीते में आग लगने का सबसे बड़ा कारण यह सामाजिक अजनबीपन है.

सांप्रदायिक फसादों के बहाने अथवा हिंदू-मुस्लिम संघर्ष के संदर्भ में मुस्लिम समाज पर विचार करने की एक विशिष्ट पद्धति रही है. प्रगतिशील तथा सुधारवादी कहलानेवाले

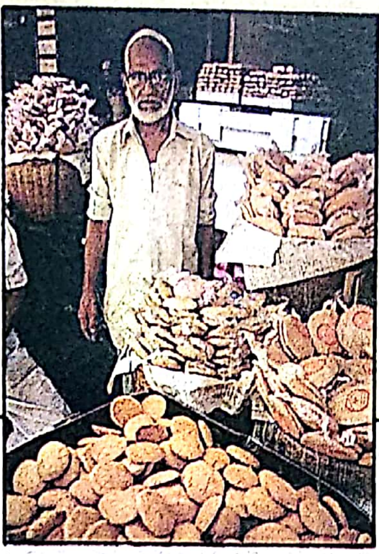

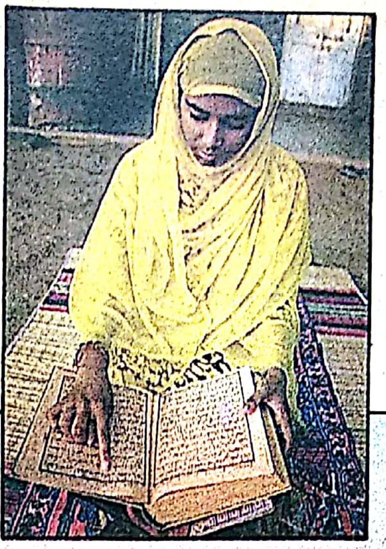

● छाया : किशोर

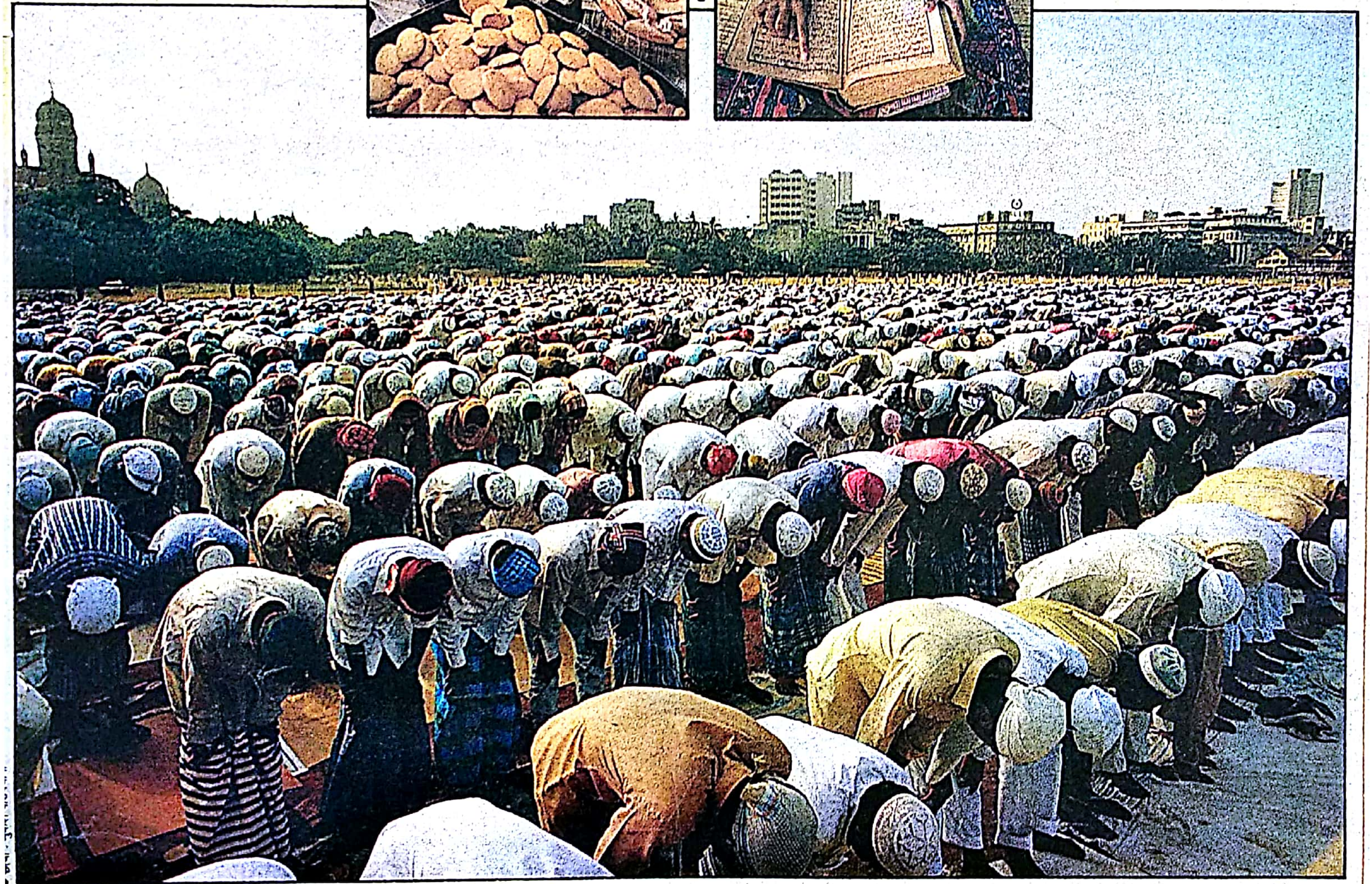

तथाकथित मुस्लिम चिंतक भी हिंदुत्व के चश्मे से ही मुस्लिम प्रश्न पर विचार करते रहे हैं. हिंदुओं के भीतर जो प्रगतिशील तबका है उसका दृष्टिकोण भी बहुत बड़े पैमाने पर बंधा रहा है. शाहबानो के बहाने मुस्लिम समाज के प्रतिक्रियावादी व परिवर्तनवादी तबके के संबंध में प्रश्न खड़े किये जा रहे हैं, परस्पर विरोधी विचार प्रकाशित होते रहे हैं.

मुख्य स्वर यह है कि मुसलमानों के पिछड़ेपन में इस्लाम-धर्म का स्वरूप बड़ा कारण है.इनके मतानुसार हिंदू-मुस्लिम संघर्ष में भी यही है. मुसलमानों की मानसिकता तथा उनके समाज की बुनावट के मूल में भी 'इस्लाम' ही है, जिसके आधार पर भारतीय मुस्लिम समाज एक स्वतंत्र इकाई है. उर्दू भाषा के कारण यह समाज भीतर से जुड़ा हुआ है और मुल्ला-मौलवियों के नियंत्रण में है. भारतीय समाज से जुड़ कर यह समाज जीता नहीं. विदेशी इस्लामी संस्कृति भारतीयता को भेदनेवाली संस्कृति है. वह देश की एकात्मता के लिए बाधा बन गयी है. मुसलमान हिंसावादी होते हैं, लकीर के फकीर होते हैं. उनमें धर्मांधता अधिक होती है. वे भारतीय माटी से बेईमानी करते हैं —

मुस्लिम समाज की ओर देखने के ये विभिन्न पारंपरिक हिदुत्ववादी दृष्टिकोण हैं. कुछ लोग इनकी तरफ अल्पसंख्यक राष्ट्रद्रोही के रूप में देखते हैं तो कुछ इन्हें अपराधी के रूप में देखते हैं. कांग्रेस इनकी ओर 'सीमांत अल्पसंख्यक' अर्थात चुनाव के समय निर्णायक शक्ति बन जानेवाली जमात के रूप में देखती है. बहुत उदार दृष्टिकोणवाला कोई रहा हो तो वह इन्हें 'आर्थिक दृष्टि से पिछड़े समाज' के रूप में देखता है. मुसलमानों के अस्तित्व का एहसास यहां के बहुसंख्यकों को सांप्रदायिक फसादों के समय अथवा चुनाव के दिनों में अथवा हिंदुओं की प्रतिक्रियावादी शक्तियों की आक्रामक भूमिका के समय होता है.

स्वतंत्रता के बाद यह समाज किस मानसिकता से गुजर रहा है, इसकी विभिन्न इकाइयों में किस प्रकार के संघर्ष उभर रहे हैं, वे इकाइयां कैसे जी रही हैं, उनकी आर्थिक-सामाजिक स्थिति कैसी है, इसकी तरफ किसने ध्यान दिया?

भारतीय मुस्लिम समाज का स्वरूप बहुत विशिष्ट रहा है. १९१७ की जनगणनानुसार यह देश की सबसे बड़ी अल्पसंख्यक जमात है. १९१५ की जनसंख्या में इनका प्रमाण ९.९१ था. १९५१ से १९७१ के बीच इनकी जनसंख्या में ३०.८५ % की वृद्धि हुई. पूरी मुस्लिम जनसंख्या का ७१.२% भाग ग्रामीण हिस्सों में रहता है. केवल १७.८% मुसलमान शहरों में बसे हैं. लक्षद्वीप, जम्मू-कश्मीर में ये बहुसंख्यक हैं. देश के ९ जिलों में इनकी संख्या ५०% से अधिक है. ३० जिलों में ये २०% से अधिक पर ५०% से कम हैं. १०२ जिलों में इनकी संख्या ५ से १०% है. देश के सभी ३५६ जिलों में ये बिखरे हुए हैं. उड़ीसा में इनकी संख्या मात्र १.२३% है. आश्चर्य तो यह है कि ७१% मुस्लिम जनसंख्या देहातों में जीती है, फिर भी इसे 'नागरी जमात' कहा जाता है. कुछ शहरों की जनसंख्या में इनका प्रमाण २७% से अधिक होने के कारण इस प्रकार की गलतफहमी हो गयी है. स्वातंत्र्यपूर्व काल में ही जिन शहरों का विकास हो चुका था, भौतिक दृष्टि से जो समृद्ध हो चुके थे, उन्हीं हिस्सों में मुसलमानों की 'नागरी जनसंख्या' अधिक है.

Scanned by CamScanner

जनसंख्या का यह बिखराव तथा विभिन्न प्रांतों में इनकी आबादी का प्रमाण—ये दो ऐसे ठोस तथ्य हैं जिनका प्रभाव इस समाज की रचना पर, इसके आचरण पर तथा इसकी मानसिकता पर गहरा हुआ है. अधिकांश हिंदू जैसा समझते हैं, भारतीय मुसलमान वैसी 'एक स्वतंत्र इकाई' नहीं है. 'दुनिया के सभी मुसलमान तथा मुसलमानी समाज एक हैं'—यह नारा जैसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गलत साबित हो चुका है, वैसे ही भारतीय स्तर पर भी सच नहीं है. इनमें गहरा विभाजन है. सिया तथा सुन्नी मुसलमानों में जमीन-आसमान का अंतर है—इस हद तक कि ये एक-दूसरे को नकारते तक हैं. केरल में सुन्नी तथा वहाबी मुसलमान एक-दूसरे के विरोध में खड़े हैं. उत्तर में भिन्न-भिन्न पंथों के अनुयायियों में निरंतर संघर्ष जारी है. इनकी मस्जिदें, धर्मप्रवचन तथा धर्मगुरु तक एक नहीं होते, बल्कि एक-दूसरे के विरोध में होते हैं.

वहाबी तथा जमाते-इस्लामी भिन्न-भिन्न तरीके से जीते हैं. ठीक इसी प्रकार मेहदवी, कादियानी आदि अन्य अनेक पंथ हैं. ये पंथ भी खोजा, बोहरा, मेमन आदि में विभाजित हैं. इन पंथों तथा संप्रदायों के कर्मकांड, सांस्कृतिक समारोह तथा धर्मशाला भी भिन्न-भिन्न हैं. इसके अलावा अपने-अपने प्रदेश की संस्कृति का जबरदस्त प्रभाव भी भारतीय मुसलमानों पर हुआ है. उत्तरप्रदेश की तरह केरल के मुस्लिमों की अपनी कोई भाषिक या सांस्कृतिक समस्या नहीं है. उत्तर के मुसलमानों पर अश्रफ मुसलमानों की संस्कृति का, नवाबों, बादशाहों तथा जमींदारों का प्रभाव बहुत स्पष्ट रूप से महसूस होता है. केरल के मुसलमानों का मुसलमानीपन आरंभिक काल में वहां पहुंचे अरबी मुसलमानों द्वारा विकसित हुआ है. महाराष्ट्र का मुसलमान वहां की मिट्टी के प्रभाव में आ चुका है. धर्म के अलावा महाराष्ट्र के ग्रामीण मुसलमानों की अन्य कोई विशिष्टता बतलाना बहुत कठिन है. बहुत ईमानदारी से अगर हम सोचें तो यह कहना अधिक औचित्यपूर्ण है कि मुसलमानों की समस्या राष्ट्रीय स्तर की न हो कर, प्रादेशिक स्तर की ही है.

दक्षिण का शहरी मुसलमान अपना नाता वहां की प्रादेशिक समस्याओं से बतलाता है, तो उत्तर का शहरी मुसलमान खुद की ऐतिहासिक भूमिका के लिए छटपटाता रहता है. राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत मुस्लिम नेताओं ने तथा अन्य शहरी वर्गों ने अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु पारंपरिक धर्म संकल्पनाओं का इस्तेमाल किया है. भाषा के संदर्भ में लें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि उत्तरप्रदेश के मुसलमान अगर छोड़ दें तो दक्षिण तथा पूर्व भारत के मुसलमानों की मातृभाषा अपने-अपने प्रदेश की भाषा रही है.

कच्छी, बोहरा और मेमन तो कच्छी तथा गुजराती का ही प्रयोग करते हैं. दक्षिण के मुसलमानों की भाषा तमिल, मलयालम, तेलुगु व कन्नड है. इतना ही नहीं वेशभूषा, केशभूषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज पूर्णतः प्रादेशिक हैं. मुसलमानों में रोटी-व्यवहार सब के साथ होता है, बेटी-व्यवहार हिंदुओं की तरह अपने-अपने पंथ, बिरादरी अथवा जाति तक मर्यादित होता है. कसाई, बागवान, तांबोली, अत्तार, मोमिन, सैयद इत्यादि व्यवसायों में कार्यरत तबकों का परिवर्तन संबंधित जात-बिरादरी में हो चुका है. हिंदुओं की तरह यहां भी बड़ी निष्ठुरता से इस जाति-व्यवस्था को निभाया जाता है. मस्जिद में साथ-साथ खड़े हो कर नमाज पढ़ने तक अथवा सांप्रदायिक फसादों के समय सुरक्षा हेतु लड़ने की हद तक ही इनकी एकता मर्यादित रहती है.

मुस्लिम समाज की वर्ग-रचना भी राष्ट्रीय स्तर पर भिन्न-भिन्न है. इसका विशिष्ट वर्ग उत्तर में अधिक संगठित तथा बंगाल और कर्नाटक में टूटी हुई अवस्था में दिख रहा है. पंजाब तथा उत्तर-भारत के अश्रफ मुसलमान (जमींदार तथा महाजनी मुसलमान) सर सैयद अहमद के समय से ही सत्ता तथा तथाकथित अस्मिता की राजनीति करते आये हैं. इन्हीं मुसलमानों ने १९५७ में ब्रिटिशों के खिलाफ सत्ता-सुरक्षा की लड़ाई लड़ी थी. १८८० से १९४५ तक उत्तरप्रदेश की राजनीति पर इन्हीं उच्चवर्गीय मुसलमानों का वर्चस्व था.

इसी वर्ग ने उन दिनों उच्च-शिक्षा ग्रहण की थी. इन्हीं के प्रतिनिधि ब्रिटिश भारत के प्रशासन और न्यायपालिकाओं में थे. अंग्रेजों की नीति तथा इस्लामी कानून के परिणामस्वरूप जब मुस्लिम स्त्रियों को पिता की संपत्ति में कानूनी अधिकार प्राप्त हो गये तो इनकी जमीन तथा जागीरदारी के सैकड़ों टुकड़े हुए और इनकी आर्थिक सत्ता भी नष्ट होने लगी. इस वर्ग ने मुस्लिम लीग की राजनीति को गति दी. विभाजन के बाद ये पाकिस्तान चले गये, और उत्तरभारत में इनकी राजनीतिक ताकत काफी कम हो गयी.

वर्ग-संरचना में मध्यमवर्ग का जन्म तथा उसका अस्तित्व महत्वपूर्ण होता है. संख्या की दृष्टि से मुस्लिमों में 'मध्यवर्ग' नाममात्र है. १८५७ के बाद अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप आधुनिक शिक्षा पद्धति की ओर मुड़ा हुआ और उस शिक्षा को ग्रहण कर शिक्षा संस्थाओं से ले कर विभिन्न बुर्जुआ व्यवसायों में कार्यरत मुस्लिम बहुत कम संख्या में हैं. स्वतंत्रता के ४० वर्ष बाद भी इस स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है. सर

प्रो. फक्रुद्दीन बेन्नूर का जन्म १९३४ में हुआ. इतिहास और मनोविज्ञान में एम. ए., कुछ वर्ष फौज के लेखा विभाग में, १९६५ से अध्यापन—भारतीय मुसलमानों की मानसिकता पर वर्षों से शोध व लेखन.

मुसलमान मुख्यधारा से अलग कतई नहीं है

—सैयद शहाबुद्दीन

★ हिंदुस्तान का मुसलमान आज देश की मुख्यधारा से अलग-थलग-सा क्यों है?

☐ देखिए, आपका यह प्रश्न ही गलत है. हिंदुस्तान का मुसलमान देश की मुख्यधारा से कतई अलग नहीं है.

★ मुख्यधारा से मेरा है मतलब देश के सभी लोगों के लिए जो चिंता के, जीवन-मरण के प्रश्न. आपने एक लेख में कहा कि 'भारत का मुसलमान बाबरी मस्जिद को नहीं भूलेगा. अगर वह इसे भूल गया तो वह गया काम से!' यानी आपके लिए इससे बड़ा मुद्दा नहीं है?

☐ जी हां, यह जीवन-मरण का सवाल है, क्योंकि आज अगर मुसलमान का घर जल रहा है, मस्जिदें तोड़ी जा रही हैं तो वह बाकी सवालों पर कैसे ध्यान दे सकता है? जिसके घर में लाश पड़ी हो उसे कहें कि अपने बच्चों को पढ़ाओ, कम बच्चे पैदा करो, रोजगार के लिए लड़ो?

★ बहरहाल, आप यह तो मानेंगे कि मुसलमान समाज में भी वही समस्याएं है जिन पर ज्यादा जोर दे कर बोलने की जरूरत है, लेकिन उनके रहनुमा उतने जोरदार तरीके से उन्हें नहीं उठाते?

☐ हर समाज में वे मुद्दे हैं, गरीबी है और दूसरी समस्याएं हैं, और हमारे मुसलमान समाज में यह सब कहीं ज्यादा है..लेकिन ऐसी बात नहीं है कि रहनुमा उसे नहीं उठा रहे. मैं मुसलमानों के बीच जाता हूं उन्हें कहता हूं कि भाई,आप अपने बच्चों को स्कूल भेजिए. लेकिन उनका जवाब होता है—क्या फायदा है, नौकरी कौन देगा?

★ हर समाज खुद को नियंत्रित करनेवाले कुछ कानूनों को समय के अनुसार बदलता है लेकिन...

☐ हां, हां मैं समझ गया आप क्या कहना चाहते हैं. कुरान का एक-एक शब्द, एक-एक अक्षर भगवान का शब्द है. वह श्रुति है, स्मृति नहीं. स्मृति बदलती रहती है, श्रुति नहीं. इसलिए उस पर बात करने का किसी को कोई हक नहीं है.

जिस दिन मुस्लिम समाज शरीयत के दायरे से बाहर जायेगा,मुस्लिम नहीं रह जायेगा.

★ अभी पिछले दिनों आपने एक लेख में मुसलमानों से अपील की कि वे एकमुश्त वोट दें. क्या यह अपील असुरक्षा की भावना का परिचायक नहीं है?

☐ जी हां, यह तो है. लेकिन मैंने मुसलमानों से यह भी अपील की है कि वे आर.एस.एस.-भाजपा के खिलाफ एकजुट हों. बाकी वे जिसे योग्य समझते हों, उन्हें जरूर इकट्ठा वोट दें. मैं तो यह कहता हूं कि एक बेईमान मुसलमान वोट देने के बजाय एक ईमानदार हिंदू उम्मीदवार को वोट दें.

★ मुसमलानों में असुरक्षा की भावना दूर करने के लिए क्या करना चाहिए?

☐ मैं तमाम लोगों से, हिंदू भाइयों से अपील करना चाहूंगा कि वे मुसलमानों को भी इस देश का नागरिक मानें. हिंदुस्तान के मुसलमानों को पाकिस्तान से कोई उम्मीद नहीं है.

● **अशोक अकल्प**

ईद खुदा का उपहार है

एक महीना रोजा रखने के बाद जब ईद का चांद नजर आता है, तो मोमिन खुदा का शुक्रिया अदा करते हैं. महीने भर उनकी परीक्षा की घड़ी थी, हर तरह की इच्छाओं और ख्वाहिशों पर काबू पाने का इम्तिहान था. उस कठिन परीक्षा के बाद ईद खुदा की तरफ से मुसलमानों के लिए एक उपहार है. वैसे रमजान महीना भी एक कीमती उपहार से कम नहीं है.

रमजान के पहले, शाबान महीने के आखिरी दिनों, एक बार पैगंबरे इस्लाम हजरत मुहम्मद ने अपने एक प्रवचन में एलान किया कि लोगों, तुम पर एक महान बरकत और मेहरबानियोंवाले महीने का साया पड़नेवाला है. उस महीने की एक रात (शबे कद्र-रमाजान की सत्ताइसवीं रात) हजार महीने से बेहतर होगी. उस महीने में तुम पर रोजे फर्ज किये गये और तरावीह मुकर्रर किया गया है. यह सब्र का महीना है. यह हमदर्दी और गमख्वारी का महीना है. इसी महीने में

Scanned by CamScanner

छाया : विनोद

सैयद के समय जनमा तथाकथित मुस्लिम मध्यमवर्ग राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं से प्रेरित था. इसी अश्रफ मध्यवर्ग ने नौकरियों के क्षेत्र में हिंदुओं से स्पर्धा शुरू की थी. उन दिनों नौकरियों के अवसर ही कम थे. इस कारण अपने आर्थिक, व्यावसायिक तथा राजनीतिक हितों को आगे ले जाने के लिए इस वर्ग ने सांप्रदायिकतावादी प्रतीकों का उपयोग शुरू किया. नौकरियों में आरक्षण से ले कर राजनीतिक क्षेत्र में प्रतिनिधित्व तक के लिए इन्होंने स्वतंत्र मतदाता संघ की बात की. इसी में से 'जमात-ए-इस्लामी' की प्रवृत्ति पैदा हुई. स्वतंत्रता के बाद उत्तर भारत को छोड़ कर अन्य सभी प्रांतों में नये मुस्लिम मध्य वर्ग का उदय हो रहा है. शैक्षणिक पिछड़ेपन के कारण यह वर्ग बहुत धीरे-धीरे विकसित हो रहा है. स्कूल, कॉलेज, शासकीय कार्यालयों में ही शिक्षित मुस्लिम दिखलाई देते हैं.

विभाजनोत्तर हिंदू प्रवृत्ति के कारण भारत के निजी उद्योगों तथा व्यवसायों में मुसलमानों को अवसर नहीं दिये जाते. सरकारी नौकरियों में जबरदस्त स्पर्धा तथा मर्यादित स्थानों के कारण इन्हें सहजता से नौकरियां भी नहीं मिलती. बड़े-बड़े निजी क्षेत्रों में गुजराती, मारवाड़ी, सिंधी आदि के बाहुल्य के कारण मुस्लिम मध्यवर्ग को वहां भी अवसर नहीं दिये जाते. अपनी आर्थिक तथा व्यावसायिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु स्वतंत्रता पूर्व अश्रफ मध्यवर्ग ने 'जमातवाद' का सहारा लिया था और वही पद्धति रूढ़ कर दी थी. अवसर न मिलने से अथवा कई जगह नकारे जाने से वे भीतर ही भीतर बेहद असुरक्षित तथा अकेलेपन से संत्रस्त होते जा रहे हैं. परिणामतः मुस्लिम मध्यवर्ग के सदस्य सांप्रदायिक प्रतीकों तथा संकल्पनाओं को फिर से स्वीकार करते जा रहे हैं. यह प्रवृत्ति बेहद विफलताओं में से उभरती है, और यही कारण है कि आज का सुशिक्षित मध्यवर्गीय मुसलमान, आधुनिक शिक्षा-दीक्षा से विभूषित होते हुए भी खुद को असुरक्षित महसूस कर रहा है, और जमातवादी सूत्रों को स्वीकार करने लगा है.

मुस्लिम श्रमिक वर्ग का स्वरूप इससे एकदम भिन्न है. कृषि-व्यवसाय में मुस्लिम बहुत कम संख्या में हैं. उत्तर भारत में जमींदार मुसलमान तो थे, पर छोटे किसान बहुत कम थे.

भारत के ग्रामीण इलाकों में मुसलमान या तो मजदूर हैं अथवा कृषि से जुड़े छोटे-छोटे व्यवसायों में हैं. उनके व्यवसाय भी उनके हुनर से जुड़े हैं. औद्योगिक प्रतिष्ठानों में ये और भी कम हैं. बहुसंख्यक होते हुए भी शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े, आर्थिक दृष्टि से गरीबी की रेखा के नीचे आनेवाले, अंध-श्रद्धालु, असुरक्षा की भावना से पीड़ित, टूटी-फूटी उर्दू बोलनेवाले, धर्म के संबंध में हजारों गलतफहमियां ले कर जीनेवाले, सुने-सुनाये धर्म-मतों पर विश्वास रखनेवाले ये मुसलमान प्रतिक्रियावादी दिखलाई देते हैं. सांप्रदायिक दंगों में इन्हीं का सर्वाधिक नुकसान होता है. ये मुल्ला-मौलवियों तथा शिक्षित पर धूर्त अश्रफ वर्ग के जहरीले प्रचार के शिकार हो जाते हैं. इन्हें भारतीय राजनीति, अर्थनीति अथवा इस्लाम के इतिहास की कोई जानकारी नहीं होती. स्वतंत्रता पूर्व से आज तक इनकी अज्ञानता, असुरक्षा तथा अंधश्रद्धा की स्थिति का फायदा मुस्लिम नेताओं ने अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए सतत उठाया है.

भारतीय मुसलमानों की समाज-रचना का अध्ययन जिस पारंपरिक पद्धति से तथा सीमित दायरे में होता आया है, ठीक उसी

कुरान शरीफ नाजिल हुआ.

रमजान महीने में मुसलमानों को गरीबों और मुहताजों की खबरगीरी लेने की सख्त हिदायत की गयी है. आपने यहां तक फरमाया कि जो व्यक्ति इस महीने में अपने गुलाम या नौकर से काम में कमी करेगा, खुदा उस पर मेहरबान होगा. इसी महीने में जकात देने के बारे में भी निर्देश दिया गया है. हर मुसलमान के लिए अपनी दौलत का चालीसवां भाग खुदा के नाम पर गरीबों को देना जरूरी है. लेकिन जकात दे कर यह नहीं समझना चाहिए कि कोई गरीबों पर एहसान कर रहा है.

जकात की तरह हर मुसलमान के लिए ईद की नमाज के पहले अपने और अपने घरवालों की ओर से फित्रा देना भी बहुत जरूरी है. इस तरह रमजान महीने और उसके बाद ईद के दिन इस्लाम ने जकात और फित्रा द्वारा एक समतावादी समाज की स्थापना की बुनियाद रखने की पहल की है. रोजा रखने से गरीबों की भूख का एहसास होता है, प्यासों की प्यास का अंदाजा होता है. ईद का दिन इसीलिए सब्र और परीक्षा के शुक्राने का दिन है.

● फी. अ.

उनके नुमाइंदों का रुख ठीक नहीं है

—के.आर. मलकानी

छाया : अशोक

★ आजादी के ४२ वर्षों बाद भी भारत के मुसलमान आज अपने को अलग-थलग क्यों महसूस करते हैं?

□ मुझे तो लगता है कि आप उन्हीं से पूछिए कि आप अपने को अलग-थलग क्यों महसूस करते हैं. मेरे हिसाब में इसके दो कारण हैं. एक तो यह कि मुसलमानों ने तब बहुत बड़ी संख्या में पाकिस्तान के लिए वोट दिया था, तो एक तरह का बोझ है उनके मन पर, जिसे आप अपराध-बोध कह सकते हैं. दूसरा यह कि पिछले ८० या १०० वर्षों से मुसलमान अपने को हिंदू से ज्यादा-से-ज्यादा अलग समझने लगा है. जब मुसलमानों का राज था तो वे होली, दीवाली, दशहरा वगैरह में हिंदुओं के साथ शरीक होते थे. आजकल नहीं मनाते.

★ लेकिन यही बात तो हिंदुओं पर भी लागू होती है?

□ लेकिन ऐतिहासिक कारणों में जायें तो हम पायेंगे कि करीब २०० साल पहले वलीउल्लाह के नेतृत्व में एक आंदोलन शुरू हुआ कि सभी मुसलमान एक हैं. फिर, अंग्रेजों ने शुरू किया. उनसे कहा गया कि साहब आप होली-दीवाली मनायेंगे तो इस्लाम खतरे में पड़ जायेगा. तो जो नया अलीगढ़ स्कूल हुआ, उनमें ये भावना पैदा की गयी कि तुम अपने को अलग-थलग रखो तो अंग्रेज बहादुर तुमको कुछ विशेष अधिकार देंगे. अंग्रेजों ने फौजों की रेजिमेंट अलग-थलग कर दी.

★ लेकिन पाकिस्तान के प्रति लगाव रखनेवाली पीढ़ी लगभग खत्म हो गयी है. नयी पीढ़ी में वह भावना नगण्य मानी जा सकती है. फिर भी उसे शक की निगाह से देखना...

□ शक घटा है. वैसा थोड़े ही है जैसा सन ४७ में था. बदला है, मामला ठंडा हुआ है. होना भी चाहिए, लेकिन उनमें बहुत गलत किस्म के लोग उभर कर आ गये जैसे शहाबुद्दीन. आप मौलाना वहीउद्दीन खान से मिलिए. वे बड़े विद्वान हैं. तर्कसंगत बात करेंगे. वे. आलोचना का जवाब ढंग से देंगे. लेकिन वे आइ.एफ.एस. नहीं रहे, एम.पी. नहीं हैं, अंग्रेजी में नहीं लिखते तो ज्यादा कोई पूछता ही नहीं है. जो ज्यादा बकबक करता है, उसे हम नुमाइंदा बना देते हैं.

★ मुसलमानों को इस स्थिति में डालने में हिंदू उग्रवाद की भी तो भूमिका रही है?

□ देखिए, हिंदू उग्रवाद जैसा मुझे कुछ नजर नहीं आता. हिंदू में हिंदुत्व की भावना होती ही है. उसके धर्म, उसकी संस्कृति पर हमला होगा, कोई ऊटपटांग बोलेगा तो हिंदू को तकलीफ होगी, जो प्रतिक्रिया होती है, वह स्वाभाविक है. लेकिन देश भर में कोई हिंदू लहर है, कोई उग्रवाद है ऐसा मुझे नहीं लगता. अगर है तो मुझे बहुत खुशी हो रही है सुन कर.

★ फिर भी आप मानेंगे तो कि बाबरी मस्जिद-राम जन्मभूमि विवाद पर हिंदू-मुस्लिम भावनाएं बेहद भड़की हैं. माहौल को, दोनों संप्रदायों के रिश्तों को बुरी तरह प्रभावित किया है?

□ देखिए, मध्य काल में पता नहीं कितने लोग मारे गये, लूटे गये, मंदिर बरबाद किये गये तो अब हिंदुओं का कहना है कि प्रतीक के तौर पर हमें तीन धर्मस्थान दे दो. विश्व हिंदू परिषद जैसी जिम्मेदार संस्था बोलती है तो दे दो, छुट्टी करो. लेकिन कुछ समझते ही नहीं. मैं इनको कहता हूं, भाई ये बहुत अच्छा सौदा है. लेकिन वे कहते हैं कि नहीं साहब, बाद में तीन हजार मांगेंगे. तो हम बोलते हैं कि जो मांगेगा उसकी हम मदद थोड़े करेंगे.

★ बहरहाल, आपके हिसाब से मुसलमानों को मुख्यधारा से जोड़ने के लिए क्या-क्या किया जाना चाहिए?

□ उनको अपना मानस बदलना पड़ेगा. उन्होंने पहले खुद अपना मानस बदला था अंग्रेजों के बहकावे, लालच में आ कर. उन्होंने अपना देश लिया. लाखों लोगों की जान गयी. अब उन्हें अपने कदम वापस लेने चाहिए.

★ लेकिन क्या आपको नहीं लगता कि बहुसंख्याक संप्रदाय होने के कारण हिंदुओं की जिम्मेदारी ज्यादा है? और पहल उनकी ओर से होनी चाहिए?

□ ऐसी बात नहीं है. कि बहुसंख्यकों के ऊपर ही सब कुछ हो. जिम्मेदारी है तो अधिकार भी हैं. लोकतंत्र में बहुमत का महत्व होता है. अल्पसंख्यक लोग 'वीटो' नहीं बन सकते.

★ लेकिन क्या उनके रुख में परिवर्तन नहीं आया है?

□ ये कहना बड़ा मुश्किल है. करोड़ों मुसलमान हैं. सब एक तरह सोचते हैं;ऐसा है नहीं: लेकिन आजकल जो उनके नुमाइंदे बन गये हैं या बनाये गये हैं, उनका रुख ठीक नहीं है. आज कौन नुमाइंदगी कर रहा है? कई बार ऐसा सोचते हैं कि मुसलमान की नुमाइंदगी एक शहाबुद्दीन कर रहा है, तो उधर एक इमाम कर रहा है. लेकिन हकीकत यह नहीं है. मैंने ऐसे भी मुसलमान देखे हैं जो कहते हैं शहाबुद्दीन को तुम लोगों ने लीडर बना कर रखा है. मरवायेगा हमें.

● अ.अ.

Scanned by CamScanner

प्रकार 'इस्लामी संस्कृति' का अध्ययन भी होता रहा है. धर्म का संबंध संस्कृति से जोड़ कर कई वैचारिक उलझनें पैदा कर दी गयी हैं. जब मुस्लिम लेखक, विशेषतः सांप्रदायिक लेखक लिखते हैं तो वे 'धर्म को संस्कृति के अर्थ में ही' प्रतिपादित करने लगते हैं. इस्लामी संस्कृति पर टीका करते समय हिंदुत्ववादियों ने भी उसके तथाकथित 'विदेशी' रूप को बतलाने हेतु धर्म को संस्कृति की एकमात्र इकाई मान कर, मुसलमान संस्कृति को अभारतीय सिद्ध करने का प्रयत्न किया है. सवाल है कि क्या मुसलमानों के भारत में आने के दिन से ही वह संस्कृति विकसित होती गयी जिसे हम आज 'इस्लामी संस्कृति' कहते हैं! ईमानदारी से देखा जाये तो आज के मुसलमानों तथा आज के हिंदुओं को एक-दूसरे से पूर्णतः अलग करना मुश्किल है, क्योंकि यहां का मुसलमान अरबस्तान से आ कर बसा विदेशी मुसलमान नहीं है. भिन्न-भिन्न जमातों के धर्म-संकरों से तथा धर्मांतर से यहां का मुसलमान समाज बना व बढ़ा है.

संस्कृति सृजनशील जीवन का परिणाम होती है. सामाजिक संस्थाओं, रीति-रिवाजों, विविध कलाओं, दर्शनों, भाषाओं तथा धार्मिक जीवन के भीतर से संस्कृति निर्मित होती रहती है. संस्कृति का आरंभ 'भाषा' से होता है. भारतीय मुस्लिमों की भाषा कौन-सी है? वास्तव में आज इसे राजनीतिक प्रश्न बना दिया गया है, जबकि सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में इसका उत्तर भिन्न मिलता है. उत्तर भारत के कुछ हिस्सों के मुसलमानों को अगर छोड़ दें तो बाकी के मुसलमान जिस प्रदेश के निवासी हैं, उसी प्रदेश की भाषा बोलते हैं. जानबूझ कर उर्दू का प्रसार स्वातंत्र्योत्तर काल का चलन है.

संगीत, चित्रकला, शिल्पकला आदि क्षेत्रों में दिखलाई देनेवाली मुस्लिमों की सृजनशीलता भारतीय तथा फारस के सांस्कृतिक समन्वय से प्रस्फुटित हुई है. इसकी शुरुआत अमीर खुसरो से होने लगी थी. क्या हिंदुस्तानी संगीत को इस्लामी संगीत कहेंगे? शिल्पकला में भी राजस्थानी तथा तुर्की कलाओं का संगम हुआ है. १२०० वर्षों की अपनी लंबी कालावधि में भारतीय मुसलमानों द्वारा निर्मित तथाकथित इस्लामी संस्कृति, भारतीय संस्कृति की एक महत्वपूर्ण इकाई है. यहां के मुसलमानों की संस्कृति इंडोनेशिया, अरबस्तान, अफगानिस्तान आदि के मुस्लिमों से एकदम भिन्न है. आश्चर्य तो यह है कि इस देश का 'इस्लाम' भी अरबस्तान के 'इस्लाम' से एकदम भिन्न है. यहां के मुसलमानों के त्योहार, उत्सव, धार्मिक समारोह, जन्म, विवाहादि अवसरों पर अपनायी जानेवाली पद्धतियां अन्य इस्लामी देशों से भिन्न हैं.

मुस्लिम लीग जैसे संगठनों ने तथा इकबाल जैसे विचारकों ने जिन अनेक भ्रमों का निर्माण किया उनमें से एक भ्रम है 'पॅन-इस्लाम', अर्थात दुनिया के सब मुसलमान एक हैं! इसी में से तथाकथित इस्लामी संस्कृति की बात भी निकली है.

वास्तव में मुस्लिमों की तथाकथित इस्लामी संस्कृति का स्वरूप बहुत ही जटिल और उलझनपूर्ण है. इस देश में हमें एक आदत है—धर्म, प्रदेश, भाषा आदि इकाइयों के आधार पर व्यक्ति अथवा समूह का वर्गीकरण. इसी से हम 'इस्लामी संस्कृति' शब्द का प्रयोग करते हैं. यह सच है कि धर्म मुसलमानों के सांस्कृतिक जीवन की महत्वपूर्ण इकाई है. परंतु क्या हिंदुओं के जीवन में भी धर्म उतना ही महत्वपूर्ण नहीं है? और इससे भी बड़ा सच यह है कि दोनों के जीवन में वह एकमात्र महत्वपूर्ण इकाई नहीं है. प्रदेश तथा भाषा के आधार पर विचार करें तो दक्षिण भारत का मुसलमान, पंजाबी मुसलमान से सभी अर्थों में भिन्न है. सच यह है कि यहां के मुसलमानों को संगठित करने के लिए मुस्लिम राजनेताओं के पास, बाबर से ले कर आज तक के इतिहास में, धर्म के अलावा और कोई प्रणाली अथवा साधन नहीं है. आधुनिक युग में महात्मा गांधी भी इस प्रवृत्ति से बच नहीं सके. जिस प्रकार हिंदू कई जातियों में विभाजित तथा बिखरे हुए हैं वैसे ही मुसलमान एक स्वतंत्र और पूर्ण इकाई नहीं हैं. इसी कारण तो धर्म के नाम पर उन्हें संगठित करने का प्रयत्न होता है.

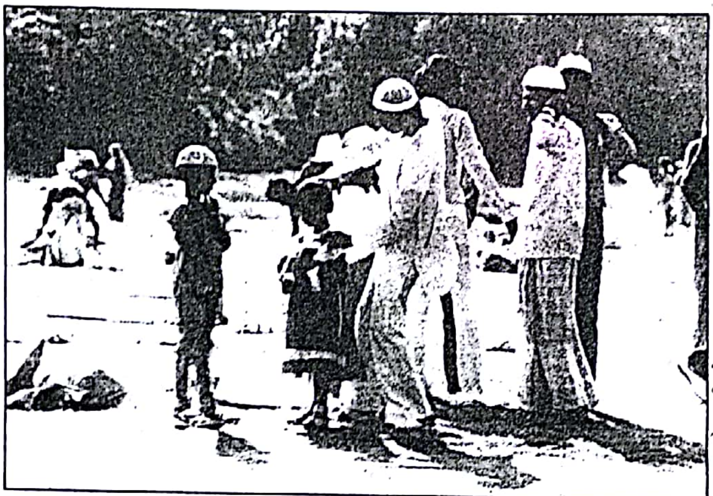

अंग्रेजों ने राजनीति के भीतर धर्म सुदृढ़ बनाया था. भारतीय जनता को उन्होंने धर्म की इकाई मात्र के रूप में देखा था. यहां की संस्कृति, भाषा तथा अर्थ-संबंधों की मूलभूत आवश्यकताओं की उन्होंने घोर उपेक्षा की. उनकी पक्षपातपूर्ण नीति के कारण ही यहां की सभी जातियां, धर्म तथा पंथ इसी माध्यम से अपनी अस्मिता का विचार करती रहीं. इसी प्रवृत्ति ने मुस्लिमों की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को बढ़ाया. क्या सोच की यह पद्धति कुरआन-शरीफ से अथवा पैगंबर की शिक्षा से निर्मित हुई है? डॉ. मोईन शाकिर ने कहा है कि सांप्रदायिकता का जन्म धर्म के कारण न हो कर, विभिन्न इकाइयों, जातियों, पंथों में बंटी हुई इस देश की समाज-व्यवस्था के कारण तथा इस देश की अनेकता में एकता की विशिष्टता के कारण हुआ है. मुसलमानों के संगठन का एहसास इस्लाम नहीं देता. इसके विपरीत उनके साथ अलगाव की जो नीति अपनायी जाती है अथवा जो पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया जाता है, उसके कारण उन्हें संगठन की आवश्यकता होती है. उनकी सांप्रदायिक तथा अलगाव की नीति के मूल में इस्लाम न हो कर, उनमें घर की हुई असुरक्षा तथा अस्थिरता की भावना रही है.

मुसलमानों की मानसिकता पर विभाजन का गहरा परिणाम हुआ है, इसे सभी स्वीकार करते हैं. आबिद हुसैन के मतानुसार १८५७ के पराजय की तुलना में, १९४७ के विभाजन का गंभीर तथा गहरा असर मुसलमानों पर हुआ. एक ओर १९४७ के मुसलमानों ने अपने रिश्तेदारों को अचानक पाकिस्तान जाते देखा और परिवार के अभाव में भटकनेवाले हिंदुओं की आंखों में मुस्लिम-विद्वेष की गहरी लपट महसूस की. लाखों गैर मुस्लिमों की आंखों में व्यक्त संदेह. तिरस्कार का अनुभव करते हुए, पाकिस्तान की मांग से पैदा हुए प्रलयंकारी परिणाम का अनुभव उन्हें धीरे-धीरे होने लगा. एक ओर घोर दरिद्रता, विषमता, अशिक्षा, अर्थप्राप्ति के सीमित साधन हैं, तो दूसरी ओर गैर-मुस्लिमों के मन से झांकता हुआ निरंतर अविश्वास! इस कारण सतत असुरक्षा तथा भय के बीच उन्हें जीना पड़ता है; और फिर इससे घबरा कर वे संगठित होने की हास्यास्पद कोशिश करने लगते हैं. इन प्रयत्नों से जो सांप्रदायिकता उभरती है, वह पहले के संदेह को और गहरा बना जाती है. सभी ओर से संकुचित व्यवहार बढ़ने लगते हैं. अपने हकों के बारे में जब भी ये आवाज उठाने लगते हैं, तो 'ये पाकिस्तान क्यों नहीं जाते!' जैसा जवाब गूंजने लगता है. गैर-मुस्लिम जानबूझ कर ऐसा करते हैं, मैं ऐसा आरोप नहीं लगा रहा.

डब्ल्यू. सी. स्मिथ ने कहा है कि भारतीय मुसलमान भारतीय भी हैं, और मुसलमान भी हैं, और इसी कारण इनकी समस्याएं विशिष्ट बन गयी हैं. स्मिथ के अनुसार मुस्लिम समाज अपने अंतर्विरोधों के कारण ध्वस्त हो गया है. भविष्य के निर्माण के लिए जिस प्रकार की आत्मिक नैतिक शक्ति जरूरी है, उसे भी वह खो चुका है, और इसी कारण उसका भौतिक अस्तित्व अनिश्चितता के एहसास से भर गया है. इस मजहब के लोग या तो शासनकर्ता के रूप में रहे अथवा सत्ता के नियंत्रण में प्रजाजन के रूप में. आज न वे प्रजाजन के रूप में हैं, न राजकर्ता के रूप में. वे तो 'समान नागरिक' हैं— एक जनतांत्रिक देश के 'नागरिक'! इस देश की नागरिकता के लिए 'धर्म-निरपेक्ष राष्ट्रनिष्ठा' की आवश्यकता है, इसका एहसास उन्हें नहीं हो पा रहा है. केवल 'नागरिक' के रूप में जीने का एहसास उनकी मानसिक संरचना में बैठ नहीं पा रहा है. इसी कारण इस समाज में एक संकटबोध की स्थिति पैदा हुई है.

इस संकटबोध के कारण यह समाज अपनी आत्मा खो चुका है. ठीक इसी प्रकार 'समाज' के रूप में अनिवार्य अस्तित्व का एहसास भी उसमें नहीं हो पाया है. पिछले १०-१५ वर्षों में पढ़-लिख कर तैयार मुस्लिम युवकों के सम्मुख अस्तित्व से संबंधित प्रश्न भयंकरता के साथ उपस्थित हो रहे हैं. पक्षपातपूर्ण व्यवहार, सांप्रदायिकता का जहर— वह इन सबको झेल रहा है, परंतु इस सारे अनर्थ के लिए 'मैं क्यों और कैसे जिम्मेदार हूं?' — इसे वह समझ नहीं पा रहा है. परिणामतः विफलता की भावना से वह पीड़ित है. उसकी इसी विफल मानसिकता का फायदा मुल्ला-मौलवी तथा फिरकापरस्त नेतृत्व उठा रहा है. भयावह असुरक्षा, अकेलापन तथा विफलता से पीड़ित यह युवक आरंभ में धर्म की ओर; धर्म से पवित्रता की ओर तथा वहां से धार्मिक पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति की ओर तथा अंततः सांप्रदायिक राजनीति की ओर मुड़ रहा है. धर्म धीरे-धीरे उसकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकता बन रहा है. 'आधुनिकता' को वह पश्चिम के अंधानुकरण के अर्थ में लेने लगा है. पश्चिमी देशों के सामाजिक-नैतिक अधःपतन के मूल में 'आधुनिकता' है, ऐसे सूत्र तैयार कर वह आधुनिकता की उपेक्षा कर रहा है. आधुनिकता की तर्कशुद्धता, बौद्धिकता, वैज्ञानिक दृष्टि तथा धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद से वह दूर भाग रहा है. वास्तव में आज का सामान्य मुसलमान तथा उसका अभिजन वर्ग एक बहुत बड़े आत्मिक संकट से गुजर रहा है. इस्लाम से बौद्धिक, आध्यात्मिक, नैतिक प्रेरणा ले कर कुछ नया गढ़ने की उसमें क्षमता अब नहीं है. डेढ़ हजार वर्ष पूर्व जब इस्लाम भारत में आया, तभी वह अपनी वैज्ञानिक दृष्टि तथा सृजनशीलता खो चुका था. अब्बा सिंह साम्राज्य के पतन के बाद

Scanned by CamScanner

इस्लाम का वैचारिक आध्यात्मिक अध:पतन शुरू हुआ. इस्लाम ग्रांथिक बना. पिछले डेढ़ हजार वर्ष से इसी ग्रांथिक परंपरा को यहां के मुसलमान विकसित करते रहे हैं. इस अध:पतन का सुंदर विवेचन डॉ. आलम खुदमिरी ने किया है.

मुस्लिम विरोध की षड्यंत्रकारी राजनीति मीनाक्षीपुरम के बाद जान बूझ कर बढ़ायी जा रही है. मुसलमान किस प्रकार देश के शत्रु हैं, इसके भड़कीले चित्र प्रसारित किये जा रहे हैं. इस कारण आम मुस्लिम दिन-ब-दिन अकेला पड़ता जा रहा है. प्राण-रक्षा की जिद से जैसे कोई सैनिक दीवार से पीठ टिका कर युद्ध लड़ता रहता है, ठीक वैसे ही आज का भारतीय मुसलमान अल्लाह से करुणा की मांग कर रहा है. आम मुसलमान अभिभावक अपने बच्चों को आत्मविश्वास अथवा अत्याधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि विकसित करनेवाली शिक्षा नहीं दे पा रहे. इस कारण नयी पीढ़ी धर्म तथा अंधश्रद्धा के कवच-कुंडल को ले कर जीने के लिए मजबूर है. शाहबानो के बहाने उफन कर आया यथार्थ बेचैन करनेवाला है. स्त्री को निराधार अथवा किसी की मेहरबानी पर फेंक देना मुसलमानों को अन्याय नहीं लगता, क्योंकि जो "धर्मसत्य है वह गलत अथवा अन्यायकारक कैसे हो सकता है?" और धर्मसत्य क्या है इसे पढ़ने की उसे आवश्यकता महसूस नहीं होती. 'पर्सनल लॉ' उसे अपनी जीवन-मृत्यु का सवाल लगता है. "मेरे मजहब में हस्तक्षेप करने का अधिकार गैर मुस्लिमों को कैसे है?" यह उसका सवाल है. "मैं इस देश का नागरिक हूं और इस नाते सबके हक तथा विशेषाधिकार समान हैं. मुस्लिम स्त्री मुस्लिम भी है, और भारतीय नागरिक भी, और इस कारण उसके संबंध में चर्चा करने का अधिकार सभी को है"— यह बात उसकी समझ में नहीं आ रही.

इस पूरी चर्चा का एक और महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि परिस्थिति के दबाव के कारण, विभिन्न संदर्भों के साथ समस्या को ग्रहण करनेवाला नवशिक्षितों का एक वर्ग बहुत धीमी गति से ही क्यों न हो, विकसित हो रहा है. संख्या में यह वर्ग छोटा है, परंतु इसकी भूमिका दिन-ब-दिन महत्वपूर्ण साबित हो रही है. शिक्षित मुस्लिम स्त्रियों को भी अब बदलते मूल्यों का एहसास हो रहा है, परंतु मुल्ला-मौलवियों की दबाव की राजनीति तथा नियंत्रण की शक्ति के कारण वे बोल नहीं पा रही हैं. शाहबानो प्रकरण का ही विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि गलत-सलत प्रचार करके 'इस्लाम खतरे में है' का नारा लगा कर भीड़ इकट्ठी की गयी थी. परंतु बहुसंख्यक मुसलमानों को लगता रहा कि 'शाहबानो को मुआवजे की रकम मिलनी चाहिए, कि शाहबानो की गलती कहां है? उनका भीतरी भय है जो उन्हें सांप्रदायिक शक्तियों की भीड़ में शरीक कर देता है. ■

मुस्लिम मन

हर जुबां पर है एक सवाल

● फीरोज अशरफ

बंबई के उपनगर जोगेश्वरी में ५० हजार आबादी की एक घनी बस्ती है—प्रेमनगर! इस बस्ती में लगभग ८-१० हजार मुसलमान हैं. सारी मुस्लिम आबादी एक ही जगह केंद्रित है. १९७४ और फिर १९८४ के सांप्रदायिक दंगों में इस बस्ती के मुसलमानों को सख्त दुश्वारी का सामना करना पड़ा. तब उनका यहां से बाहर निकलना दूभर था. दिन गुजरे गये. उसकी खट्टी-मीठी यादें बस्तीवासियों के दिलों में आज भी मौजूद हैं. लेकिन दिन-प्रतिदिन दुनियावी मुसीबतों के बावजूद प्रेमनगर निवासी जिंदगी के दिन गुजार रहे हैं. उनके छोटे-छोटे सपने हैं, नन्हे-नन्हे अरमान हैं, रेंगती हुई तमन्नाएं हैं: रमजान के मौके पर और ईद के पहले, लेखक ने प्रेमनगर की मुस्लिम बस्ती में कई घंटे गुजार कर, वहां के लोगों की जिंदगी में झांकने की कोशिश की.

शौकत साहब १९५२ से यहां आबाद हैं. एक मिल मजदूर की हैसियत से वे बंबई में रिहाइशी मकान लेने की स्थिति में उस वक्त भी नहीं थे, आज भी नहीं. आम लोगों के लिए घर एक हसीन सपना है. फिर भी उन दिनों शहर से बाहर उपनगरों में खाली पड़ी जमीनों पर झोंपड़े डाल देने में कठिनाई नहीं थी. उनकी तरह अन्य कई लोगों ने भी प्रेमनगर और उसके आसपास झोंपड़े बना लिये. देखते-ही-देखते पिछले ३०-४० वर्षों में यह सारा क्षेत्र झोंपड़ों चालों और खोलियों से भर गया.

□ रजिया और कुब्रा

□ इरशाद अली

□ अब्दुल कादिर

१९५२ से ले कर अब तक शौकत साहब की जिंदगी में कोई बड़ा फर्क नहीं आया. परिवार का बोझ और बढ़ती हुई महंगाई की मार वे बराबर सहते रहे. अलबत्ता, सामाजिक और मजहबी काम का शौक बना रहा. १९५५ में उन्होंने अपने दोस्तों और पड़ोसियों की मदद से एक संस्था *जमात पवीना मुस्तुफा* रजिस्टर्ड करायी. वे वर्षों तक इस संस्था के सक्रिय सचिव रहे. बाद में दूसरे लोग भी संस्था में आये. नौकरी से सेवानिवृत्त होने के बाद उन्होंने दर्जी की दुकान शुरू की. अब उनका बेटा लियाकत दुकान संभालता है और शौकत साहब खुदा की याद में वक्त गुजारते हैं.

नागपुर निवासी अब्दुल कादिर इसी दुकान पर मिले. कादिर साहब भी प्रेमनगर में १९५६ से हैं. वे करोना शू कंपनी में मशीन ऑपरेटर हैं. उनका १२ लोगों का परिवार है. उनका एक बेटा भी कंपनी में काम करता है, लेकिन बाप-बेटा घर का खर्च नहीं चला पाते हैं. हर महीने २००-३०० रुपये का कर्ज हो जाता है.

अब्दुल रऊफ साहब का बेटा हमीद बी.ए. तक पढ़ा हुआ है. उसने तीन-चार वर्ष पहले ही रोजगार दफ्तर में अपना नाम लिखाया है. लेकिन आज तक उसके पास एक भी इंटरव्यू का बुलावा नहीं आया. उसके चेहरे पर गजब की उदासी थी. हमीद की बेकारी पर टिप्पणी करते हुए जमात के सचिव और सामाजिक कार्यकर्ता लाल मुहम्मद शेख कहने लगे, "इसीलिए हम मुसलमानों में अपने बच्चों को ज्यादा नहीं पढ़ाते हैं. पढ़-लिख कर भी बेकार रहना पड़ता है."

प्रेमनगर के मुस्लिम बच्चे-बच्चियों की शिक्षा के बारे में विस्तार से हमें मास्टर नूर आलम ने बताया. नूर साहब नगरनिगम के मिडिल स्कूल में शिक्षक हैं. उन्होंने बताया, "शुरू में यानी पहली-दूसरी जमात में १००-१२५ बच्चे होते हैं. जैसे-जैसे वे ऊपर की जमातों में पहुंचते जाते हैं, उनकी तादाद घटती जाती है. मैट्रिक तक उन १०० बच्चों में मुश्किल से ३०-३२ लड़के ही होते हैं. बी.ए. तक एक-दो और शायद ही कोई और भी उच्च शिक्षा—डॉक्टरी, इंजिनियरिंग

रजिया पटेल

मुस्लिम औरत का विद्रोह

मुसलमान औरतों के लिए सिनेमाबंदी की साजिश जब मुसलमान मर्दों ने की तो रजिया पटेल ने उसके खिलाफ जलगांव में विद्रोह किया. फिल्म अगर खराब हो तो सबके लिए उसे बंद करना चाहिए. ऐसा उनका कहना था. आज जब घर-घर में दूरदर्शन का थिएटर बना है, तब पैसेवालों को उसे देखने की क्यों छूट होनी चाहिए? उसने ऐसा सीधा सवाल कथित मजहबपरस्तों से किया.

समता की चाह पुस्तक में उसने मुसलमानों को नयी पीढ़ी का मानस सबके सामने रखा. *औरत, कानून और धर्म* के संदर्भ में एक अंतर्राष्ट्रीय परिषद का आयोजन किया गया, उसमें रजिया ने साझेदारी की. मिश्र में जा कर उसके इस विषय का अध्ययन किया. इस बहाने दुनिया के कई मुसलमान देशों की औरतों से वह मिली और उसने पाया कि सारे मुसलमान देशों की औरतें गैरबराबरी के कारण परेशान हैं और रास्ता खोजने के प्रयास में हैं. वह पाकिस्तान और बांग्ला देश में जा कर भी अध्ययन करना चाहती थी, लेकिन वीसा न मिलने के कारण जा नहीं पायी. लेकिन सम्मेलन के नुमाइंदों से उसने खुल कर बात की. मजहब और सल्तनत की बागडोर मर्दों के हाथ में होने के कारण जो कानून बने हैं, उनमें मुस्लिम औरत से नाइन्साफी की गयी है, ऐसा करीब-करीब सारी मुस्लिम औरतों ने उसे बताया. अगर वे हिम्मत जुटा पायीं तो इनकलाब ला सकती हैं.

रजिया इस वक्त छात्र युवा संघर्षवाहिनी का अखिल भारतीय सचिव पद संभाल रही है.

●यदुनाथ थत्ते

Scanned by CamScanner